नाडिया जिला प्राथमिक विद्यालय परिषद व अन्य

बनाम

सृष्टिधर बिश्वास व अन्य

25 अप्रैल, 2007

[ए. के. माथुर और दलवीर भंडारी, न्यायमूर्तिगण]

अधिकारिक निर्णय- रिट याचिका- नियुक्ति की माँग कर रहे अभ्यर्थी द्वारा- रियायत के आधार पर नियुक्ति का निर्देश देने वाला आदेश इस स्पष्टीकरण सहित पारित किया गया कि इस आदेश को अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जायेगा- न्यायालय द्वारा एक अन्य रिट याचिका में ऐसे पूर्ववर्ती आदेशों के आधार पर इसी प्रकृति का समान अनुतोष प्रदान किया गया- उच्च न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती दो आदेशों के आधार पर वर्तमान प्रकरण में समान प्रकृति का अनुतोष प्रदत्त किया गया- औचित्य- अभिनिर्धारित किया- रियायत के आधार पर पारित किया गया आदेश विधि का निर्धारण नहीं करता है और इसका अधिकारिक निर्णय के तौर पर अनुसरण नहीं किया जा सकता- राज्य सरकार पर वित्तीय भार डालने का आदेश पारित करने से पहले न्यायालय को संयम रखना चाहिये- वर्तमान मामले में, अभ्यर्थियों को पिछले आदेशों के आधार पर अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता था क्योंकि ये अधिकारिक निर्णय का मूल्य का गठन नहीं करते- सेवा विधि- नियुक्ति- न्यायिक संयम।

प्राथमिक शिक्षकों की नियुक्ति के उद्देश्य से एक पैनल तैयार किया गया था। प्रशिक्षित अभ्यर्थियों को सम्मलित करना छोड़ते हुए पैनल बनाए जाने को 'एस' व अन्य 107 अभ्यर्थियों ने चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने राज्य को उन्हें नियुक्ति देने का निर्देश दिया। यह आदेश रियायत के आधार पर था और आदेश में यह विशेष रूप से स्पष्ट किया गया था कि इस आदेश को अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा। तत्पश्चात् उच्च न्यायालय द्वारा 'एस' के मामले के निर्णय का अनुसरण करते हुए उम्मीदवार 'डी' व कुछ अन्य द्वारा प्रस्तुत रिट याचिकाऐ मंजूर की गई थी। तत्पश्चात् प्रत्यर्थियों द्वारा अन्य रिट याचिका प्रस्तुत की गई और उसे भी 'डी' व 'एस' के मामलों में पारित निर्णयों के आधार पर मंजूर किया गया। इसलिए, वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई।

अपील मंजूर की, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि-

1. रियायत के आधार पर एक आदेश इस स्पष्टीकरण के साथ पारित किया गया था कि इसे अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा, बाध्यकारी अधिकारिक निर्णय के रूप में अनुसरण नहीं किया जा सकता। रियायत के आधार पर पारित कोई भी आदेश विधि का निर्धारण नहीं करता है और इसका अधिकारिक निर्णय के रूप में अनुसरण नहीं किया जा सकता है। एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने बाद में इसे एक विधि के रूप में लिया और अधिकारिक निर्णय के रूप

में उन व्यक्तियों को अनुतोष देने में इसका अनुसरण किया जो बड़ी संख्या व्यक्तियों को पीछे छोड़ गए थे, जो पैनल में थे व जो उस न्यायालय के समक्ष पक्षकार नहीं थे। न्यायालय को चाहिये कि राज्य सरकार पर वित्तीय भार डालने का आदेश पारित करने से पूर्व संयम रखे। 1980 के एक पैनल को बिना यह महसूस किए 2004 तक जीवित/कायम रखा गया था, कि इस बार कई और अभ्यर्थी कतार में प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सही दृष्टिकोण नहीं था। [पैरा 10] [595-ए-सी]

मित्तल इंजीनियरिंग वर्क्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम कलेक्टर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क मेरठ, [1997] 1 एससीसी 203 और अमित दास बनाम बिहार राज्य, [2003] 5 एससीसी 488 पर भरोसा किया।

2. इसलिये, 'एस' के मामले में दिया गया निर्णय बाध्यकारी नहीं है क्योंकि यह विधि का विनिश्चय नहीं करता। इसे बाध्यकारी अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है। वर्तमान मामले में पूर्ववर्ती दो रिट याचिकाओं के निर्णयों पर भरोसा करते हुए अपनाया गया दृष्टिकोण बरकरार नहीं रखा जा सकता क्योंकि 'एस' के मामले में दिया गया निर्णय रियायत के आधार पर था और यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि इसे एक अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा। [पैरा संख्या 12 व 13] [595-ई, एफ]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील संख्या 1020/2005

कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा ई.एम.ए. नं. 313/2003 में पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 11.06.2004 से।

अपीलार्थीगण की ओर से श्री गौरब बनर्जी, पी. देब बर्मन, अर्जुन कृष्णन, जॉयदीप मजूमदार व रूबी सिंह आहूजा।

प्रत्यर्थीगण की ओर से श्री आर. के. गुप्ता, एस. के. गुप्ता व ए. एन. बरदियार।

न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया-

ए. के. माथुर, न्यायाधीश

1. यह अपील कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.06.2004 के विरूद्घ निर्देशित है। जिसके द्वारा खंड पीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के उस आदेश की पुष्टि की जिसमें निर्देश दिया गया था कि सभी 55 रिट याचिकाकर्ताओं को छह सप्ताह की अवधि के भीतर शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाए। इस आदेश से व्यथित होकर नादिया जिला विद्यालय परिषद ने खंड पीठ के समक्ष एक अपील दायर की। खण्ड पीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.06.2004 की पुष्टि की और इसलिये वर्तमान अपील की गई।

2. इस अपील के निस्तारण के उद्देश्य से, कुछ तथ्यों का पुनर्कथन किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षकों की नियुक्ति हेतु 1980 में नदिया जिला के लिए एक पैनल तैयार किया गया था इस पैनल में 1965 अभ्यर्थियों को शामिल किया गया था। इस पैनल में से केवल 600 प्रशिक्षित अभ्यर्थी थे। भर्ती नियमावली के नियम 3 (डी) में उपबंध है कि प्राथमिक शिक्षकों के पद पर नियुक्ति हेतु पैनल तैयार करते समय प्रशिक्षित अभ्यर्थियों को इस तरह प्राथमिकता दी जायेगी कि मौजूदा विद्यालयों में रोल संख्या में अभिवृद्घि होने के कारण समय समय पर सरकार द्वारा स्वीकृत सभी अतिरिक्त पदों पर और ऐसे स्कूलों में सामान्य रिक्तियों में से कम से कम 5 प्रतिशत केवल प्रशिक्षित प्रत्याशियों द्वारा भरे जायेंगे, यदि प्रशिक्षित अभ्यर्थी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हों। अधिसूचना दिनांकित 26 अक्टूबर, 1971 द्वारा, पश्चिम बंगाल सरकार ने सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिये प्रशिक्षण को एक अतिरिक्त योग्यता के रूप में मान्यता दी। फिर अधिसूचना दिनांकित 5 सितंबर, 1973 के द्वारा, यह उपबंध किया गया कि जब पूर्व से तैयार पैनल में से नियुक्ति दी जाए, तो सभी अतिरिक्त पदों पर नियुक्ति के लिये प्रशिक्षित अभ्यर्थियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्रशिक्षित अभ्यर्थियों को सम्मिलित किया जाना छोडते हुए पैनल तैयार किये जाने को सी. आर. नं. 2522 (डब्ल्यू)/1981 में सिराजुल हक मल्लिक और 107 अन्य अभ्यर्थियों द्वारा चुनौती दी गई थी। वह रिट याचिका 17 सितंबर, 1987 को मंजूर

की गई थी। उस आदेश से व्यथित होकर सरकार द्वारा एक अपील एफ.एम.ए.टी. नं. 159/1988 प्रस्तुत की गई। रिट याचिका में पारित आदेश को खण्ड पीठ द्वारा अपने आदेश दिनांकित 14 फरवरी 1989 द्वारा उपांतरित करते हुए यह निर्देश दिया कि याचिकाकर्ताओं को मौजूदा रिक्तियों में और तत्काल भविष्य में उत्पन्न होने वाली रिक्तियों में नियुक्ति दी जायेगी तथा याचिकाकर्ताओं से भिन्न अन्य किसी को भी नियुक्ति की पेशकश नहीं की जाएगी। यह आदेश राज्य द्वारा दी गई रियायत पर पारित किया गया था। इस आदेश की पालना नहीं की गई। इसलिए, एक अवमानना याचिका प्रस्तुत की गई और सिराजुल हक मल्लिक और 107 अन्य के मामले में, इस अवमानना याचिका में दिनांक 30 जून, 1989 को उन्हें नियुक्ति दी गई।

3. इसके बाद 16 जुलाई, 1989 को एक दिबाकर पाल और 87 अन्य ने एक रिट याचिका सी.ओ. नं. 11154 (डब्ल्यू)/1989 पेश की। यह रिट याचिका आदेश दिनांकित 13 मार्च, 1991 द्वारा इस आधार पर मंजूर की गई कि याचिकाकर्ताओं की वही समान परिस्थितियां हैं, जैसी कि सिराजुल हक मलिक और 107 अन्य के मामले में थी। इसलिए, कोई अलग उपचार नहीं दिया जा सकता है और उन्हें भी नियुक्ति का लाभ दिया गया था। इस आदेश के विरूद्घ खण्ड पीठ के समक्ष एक अपील प्रस्तुत की गई थी, जिसे खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात् एक अवमानना

याचिका प्रस्तुत की गई। जिसके अनुसरण में आदेश दिनांकित 23 जून, 1999 पारित किया गया और दिबाकर पाल और 87 अन्य को नियुक्ति दी गई। इसके बाद दिनांक 2 अगस्त, 1989 को वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत की गई थी। यह रिट याचिका भी सिराजुल हक मल्लिक और दिबाकर पाल के मामलों के निर्णयों के आधार पर दिनांक 17 जनवरी 2001 को मंजूर की गई। इस याचिका में याचिकाकर्ता, यानी याचिकाकर्ता और 54 अन्य प्रशिक्षित अभ्यर्थी थे। इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इन 55 व्यक्तियों को सिराजुल हक मलिक और दिबाकर पाल के मामले के समानुपातिक मानते हुए नियुक्ति का आदेश दिया। यद्यपि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अन्य व्यक्तियों को, जो 1999 और 2000 के बीच पक्षकार के रूप में जोडे गये थे, समान अनुतोष प्रदान नहीं किया। इस आदेश से व्यथित होकर, खंड पीठ के समक्ष एक अपील प्रस्तुत की गई और विलम्ब की एक आपत्ति उठाई गई। यद्यपि, खण्ड पीठ ने विलम्ब की आपत्ति को खारिज कर दिया लेकिन उन व्यक्तियों को, जो 1999 और 2000 में इस रिट याचिका में जोड़े गये थे, कोई लाभ देने से इंकार कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि इन व्यक्तियों को कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि उन्होंने देर से संपर्क किया था लेकिन 55 लोगों को इस आधार पर लाभ दिया कि राज्य सिराज़ुल हक मलिक मामले में चयन में बरती गयी अनियमितता और अवैधता उजागर नहीं करना चाहता था और इसी तरह के तर्क पर दिबाकर पाल की याचिका भी मंजूर की गई थी और

वर्तमान याचिका 1989 में, दिबाकर पाल के मामले के तुरंत बाद दायर की गई थी। इसलिए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि याचिकाकर्ताओं ने दिबाकर पाल की 16 जुलाई, 1989 को रिट याचिका के निपटारे के तुरंत बाद 2 अगस्त, 1989 को संपर्क किया। इसलिए, अपील में कोई विलम्ब नहीं हुआ। दूसरा, यह भी तर्क दिया गया कि चूंकि पैनल का कार्यकाल समाप्त हो गया है, इसलिए नियुक्ति नहीं की जा सकती है। इसे भी अस्वीकार कर दिया गया था। यह तर्क दिया गया कि सिराजुल हक मल्लिक का मामला और दिबाकर पाल का भी मामला एक अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि सिराजुल हक मलिक में आदेश रियायत के आधार पर पारित किया गया था लेकिन इस आपत्ति को खण्ड पीठ ने अस्वीकार कर दिया। इसके बाद, उप-मौन (सब-साईलेंटियो) के सिद्धांत के आधार पर यह तर्क दिया गया कि एक विनिश्चय जो गुणावगुण पर और उसमें अंतर्ग्रस्त विवाद्य विषय पर विचार कर पारित नहीं किया गया है, वह न्यायालय द्वारा घोषित कानून नहीं हो सकता और इसका बाध्यकारी प्रभाव नहीं हो सकता है। इस आपत्ति को भी उच्च न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया था। अंत में, यह तर्क दिया गया कि भले ही कोई अनियमितता या अवैधता की गई हो, उसे कायम नहीं रखा जा सकता है। लेकिन इस निवेदन को भी खंड पीठ ने अस्वीकार कर दिया। इसलिये खण्ड पीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के 55 व्यक्तियों को नियुक्ति देने के आदेश की पुष्टि करते हुए राज्य द्वारा

दायर अपील को खारिज कर दिया। न्यायमूर्ति सिन्हा, खण्ड पीठ के एक अन्य सदस्य, वरिष्ठ न्यायाधीश के विचार से सहमत थे, लेकिन उन्होंने प्रेक्षित किया कि यद्यपि 1982 में सिराजुल हक मलिक के मामले में पारित आदेश और मुकदमेबाजी की श्रृंखला के बावजूद इन व्यक्तियों ने न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया क्योंकि वे अन्य धन्धों में लगे हो सकते हैं और अदालत ने आगे कहा कि विधि और समानता सतर्क लोगों की मदद करती है न कि अकर्मण्य लोगों की। यद्यपि, विद्वान न्यायाधीश ने वरिष्ठ न्यायाधीश से सहमति व्यक्त की और निर्देश दिया कि केवल उन 55 व्यक्तियों को ही अनुतोष दिया जाएगा। इस आदेश से व्यथित होकर, वर्तमान अपील राज्य द्वारा दायर की गई थी।

4. हमने पक्षकारों के विद्वान अभिभाषकगण को सुना। विद्वान अभिभाषक अपीलार्थीगण ने निवेदन किया कि जिन व्यक्तियों ने समय पर न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया था और अन्य मामलों के निर्णय के परिणाम की प्रतीक्षा की थी, वे लाभान्वित नहीं हो सकते। न्यायालय केवल उन व्यक्तियों को लाभ देता है जो अपने अधिकारों के बारे में सतर्क हैं न कि उन्हे जो बाड़ पर बैठें हों। मलिक के मामले का फैसला 1982 में हुआ था, 1989 में दिबाकर पाल ने याचिका दायर की और तत्पश्चात् 1989 में इन प्रत्यर्थीगण ने रिट याचिका दायर की। इसके बाद दिबाकर पाल द्वारा दायर याचिका में 1980 के पैनल को निराशाजनक रूप से देरी से चुनौती

दी गई। इसी प्रकार वर्तमान रिट याचिका इन प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर की गई। यह स्पष्टीकरण कि प्रत्यर्थीगण ने मलिक के मामले या दिबाकर के मामले में निर्णय प्रतीक्षा की, शायद ही प्रासंगिक है। इस सम्बन्ध में विद्वान अभिभाषक ने हमारा ध्यान इस न्यायालय के हाल के निर्णय अध्यक्ष, यू. पी. जल निगम और ए. एन. आर. वी. जसवंत सिंह और अन्य, जे. टी. (2006) 10,500 की ओर आकर्षित करवाया। उस मामले में, इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करते हुए, यह सम्प्रेक्षित किया गया था कि जो लोग बाड़ पर बैठे रहते हैं और अनुकूल आदेश की प्रतीक्षा करते हैं और उसके बाद मामले को उठाने के लिए जागते हैं, वे किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं हैं। इस निर्णय के पैरा 13 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार निष्कर्ष दियाः

> " ऊपर संक्षेपित विधि के कथन की दृष्टि से प्रत्यर्थीगण दोषी हैं क्योंकि प्रत्यर्थीगण ने सेवानिवृत्ति को स्वीकार करने में मौन सहमति व्यक्त की थी और इसे समय पर चुनौती नहीं दी। यदि वे पर्याप्त सतर्क होते, वे दूसरों की तरह रिट याचिकाएं दायर कर सकते थे। इस प्रकार, जब यह प्रकट होता है कि दावेदारों ने समय बर्बाद किया या व्यतीत कर दिया और समय रहते रिट याचिका प्रस्तुत करने के लिये मौके का फायदा नहीं उठाया तब ऐसे मामलों में न्यायालय को उस पदधारक को अनुतोष प्रदान

करने में बहुत धीमा होना चाहिये। दूसरा, पदधारक की मौन स्वीकृति या अधित्यजन के प्रश्न को भी विचार में लिया जायेगा कि क्या अनुतोष प्रदत्त किया गया तो अन्य पक्षकार प्रभावित होने जा रहे हैं। वर्तमान मामले में, यदि प्रत्यर्थीगण ने अधिनियम के अनुसार प्रावधानों के उल्लंघन होने पर अपनी सेवानिवृत्ति को चुनौती दी होती, तो शायद निगम दायित्व को पूरा करने के लिये राशि जुटाने हेतु समुचित कदम उठा सकता था, लेकिन प्रत्यर्थीगण ने अपने अधिकारों का दावा न कर समय व्यतीत होने दिया और अनेक वर्ष बीत जाने के बाद उन्होंने दो वर्षों के लाभ का दावा करते हुए याचिका प्रस्तुत की है। इसके लिये निश्चित रूप से निगम को धन जुटाने की आवश्यकता होगी जिसका निगम के वित्तीय प्रबंधन पर गंभीर वित्तीय प्रभाव पडने वाला है। न्यायालय को ऐसे व्यक्तियों का बचाव क्यों करना चाहिये जब वे स्वयं मौन स्वीकृति व अधित्यजन के दोषी हैं।"

वर्तमान मामले में पैनल 1980 में तैयार किया गया था और याचिकाकर्ताओं ने दिबाकर पाल के मामले में निर्णय के बाद 1989 में अदालत का दरवाजा खटखटाया। ऐसे व्यक्तियों को न्यायालय द्वारा कोई लाभ नहीं दिया जाना चाहिए, जब उन्होंने नौ साल से अधिक समय व्यतीत होने दिया। अनुतोष प्रदान करने के मामले में विलम्ब बहुत

महत्वपूर्ण है और न्यायालय ऐसे व्यक्तियों के बचाव में नहीं आ सकता जो अपने अधिकारों के प्रति सतर्क नहीं हैं। इसलिये, उच्च न्यायालय द्वारा नौ वर्षों का विलम्ब क्षमा करने के लिये अपनाये गये दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया जा सकता।

5. अब, गुणावगुण के प्रश्न पर आते हुए, अपीलार्थीगण के विद्वान अभिभाषक ने निवेदन किया कि पश्चातवर्ती दो खण्ड पीठों द्वारा दिबाकर पाल के मामले में व वर्तमान मामले में मल्लिक के मामले की समुचित विवेचना नहीं की गई है। मल्लिक का मामला प्रथम तो रियायत के आधार पर विनिश्चित किया गया था और दूसरा, इसमें यह स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि इसे अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जायेगा। इसके बावजूद मल्लिक के मामले को पश्चातवर्ती दो खण्ड पीठ ने अधिकारिक निर्णय के रूप में मानते हुए उसका अनुसरण किया और मामले का निस्तारण कर दिया। विद्वान अभिभाषक के तर्कों की विवेचना करने के उद्देश्य से हम मल्लिक के मामले के इतिहास को दोहराते हैं।

6. विद्वान अभिभाषक ने हमारा ध्यान विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा मल्लिक की ओर से दायर रिट याचिका में पारित आदेश की ओर आकर्षित किया, जो निम्नानुसार हैः

" पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते

हुए मैं निम्नलिखित शर्तों पर उपर्युक्त नियम का निस्तारण करता हूँ-

(क) प्रत्यर्थी राज्य को नादिया जिले में प्राथमिक शिक्षकों के रूप में याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति के लिए पदों के सृजन और/या स्वीकृति देने का निर्देश दिया जाता है, क्योंकि जिला विद्यालय परिषद्, नादिया की ओर से यह निवेदन किया गया था कि याचिकाकर्ताओं को नियुक्त करने के लिये कोई रिक्ति नहीं है।

(ख) अध्यक्ष, जिला विद्यालय परिषद् को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं को नादिया जिले के तहत विभिन्न विद्यालयों में प्राथमिक शिक्षकों के रूप में या तो इस आदेश के निर्बंधनों के अधीन सरकार द्वारा सृजित और/या स्वीकृत किये पद पर अथवा मौजूदा रिक्तियों पर, यदि कोई हो; नियुक्त और/या समाहित करे।

(ग) सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षकों के पदों का ऐसा सृजन और/या स्वीकृति इस आदेश की संसूचना की दिनांक से चार सप्ताह में किया जायेगा और जिला विद्यालय परिषद् नादिया द्वारा विधि के अधीन अपेक्षित सभी औपचारिकताओं का पालन करने के बाद चार सप्ताह बाद याचिकाकर्ताओं को प्राथमिक शिक्षक के रूप में नियुक्ति दी जायेगी।

(घ) याचिकाकर्ताओं को याचिकाकर्ता संख्या 4 के रोजगार विनिमय कार्ड द्वारा भेजे गए पते और साक्षात्कार कार्ड की संख्या को सही करने और याचिका संख्या 1 के पते को सही करने की अनुमति दी जाती है और उन्हें निर्देश दिया जाता है कि संबंधित प्राधिकारी के समक्ष इसकी सूचना दें।

7. 17 सितंबर, 1987 के इस आदेश से व्यथित होकर, यह मामला अपील में लाया गया और 14 फरवरी, 1989 को खण्ड पीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित कियाः

"पक्षकारों की सहमति से आलौच्य निर्णय को रद्द किया जाता है और निम्नलिखित निर्बंधनों में जारी निर्देशों द्वारा यह प्रतिस्थापित किया जाता हैः

1. इस आदेश में उन रिट याचिकाकर्ताओं को, जिनके नाम इस रिट याचिका के कॉज टाईटल में दर्शित हैं, को नादिया जिला की मौजूदा रिक्तियों में व तत्काल भविष्य में उत्पन्न होने वाली रिक्तियों में प्रशिक्षित शिक्षकों के पदों पर रोजगार की पेशकश की जाएगी, उन रिट याचिकाकर्ताओं के अलावा अन्य किसी को रोजगार की पेशकश नहीं की जायेगी जब तक कि याचिकाकर्ताओं को पहले ऐसी नियुक्ति की पेशकश नहीं की गई हो।

2. इस निर्देश को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से, नियमों/आदेशों में शिथिलता इसे आवश्यक गति प्रदान करेगी और इनमें से किसी भी रिट याचिकाकर्ता को नियुक्ति की पेशकश देने में ऐसे नियमों/आदेशों का बाधा के रूप में को अभिवाक् नहीं किया जाएगा।

3. वे रिट याचिकाकर्ता जो यह पेशकश स्वीकार करते हैं वे इस स्वीकारोक्ति के अनुमत दिनों में वास्तव में नियुक्त किये जाएगें। जैसा कि इस न्यायालय को प्रथम प्रत्यर्थी (पश्चिम बंगाल राज्य) व चतुर्थ प्रत्यर्थी (निदेशक, प्राथमिक शिक्षा स्कूल, पश्चिम बंगाल) द्वारा अपने अभिभाषक श्री शंकर मुखर्जी के मार्फत अण्डरटेकिंग दी गई, जो अण्डरटेकिंग सम्यक् रूप से स्वीकार की गई, कि उपर्युक्त वर्णित निर्देशों को समय सीमा में लागू किया जायेगा। सचिव शिक्षा विभाग पश्चिम बंगाल सरकार अण्डरटेकिंग का वर्णन करते हुए एक शपथ पत्र रजिस्ट्री में पेश करेंगे जो पेश किए जाने पर वर्तमान प्रकरण के अभिलेख में रजिस्टर किया जाए। प्रथम व चतुर्थ प्रत्यर्थीगण के विद्वान अभिभाषक ने यह स्पष्ट किया है कि उनके कक्षीकार एक विशेष मामले के तौर पर उपर्युक्त निर्बन्धनों के आधार पर पारित किये

जाने वाले आदेश पर सहमत हुए हैं और इसको अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकेगा।"

8. जब इस आदेश का पालन नहीं किया गया, तो एक अवमानना याचिका दायर की गई व उस अवमानना याचिका में खण्ड पीठ ने 30 जून, 1989 को निम्नलिखित आदेश पारित कियाः

"30 जून, 1989 को मौजूदा 82 रिक्तियों पर 1 जुलाई, 1989 से रिट याचिकाकर्ताओं को मूल निविदा नं. 159/1988 के विरूद्घ अपील में अपील पीठ द्वारा दिये गये निर्णय 14 फरवरी, 1989 में निहित निर्देश संख्या 1 के अनुसार नियुक्ति दी जाएगी; इस निर्देश को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से अनुकम्पा के आधार पर रिक्तियों व नियुक्तियों में आरक्षण सम्बन्धी नियमों/आदेशों सहित मौजूदा नियमों/आदेशों में उपर्युक्त निर्णय के इस संदर्भ में जारी निर्देश संख्या 2 के दृष्टिगत आवश्यक शिथिलता दी गई समझी जाएगी।"

पहले 82 रिट याचिकाकर्ता 7 जुलाई, 1989 को या उससे पहले दोपहर 12 से सायं 4 बजे के मध्य जिला विद्यालय परिषद्, नादिया कृष्णनगर के कार्यालय में नियुक्ति पत्र संकलित करने के प्रयोजन से रिपोर्ट करेंगे और वे 10 जुलाई, 1989 को या उससे पहले उस स्टेशन पर ड्यूटी जॉइन करेगें जहाँ उन्हे पदस्थापित किया गया है।

इसके बाद पैदा होने वाली रिक्तियों में, रिट याचिकाकर्ताओं के अलावा अन्य किसी को तब तक रोजगार की पेशकश नहीं की जाएगी जब तक कि सभी याचिकाकर्ता पहली बार समाहित नहीं कर लिया जाता; ऐसी नियुक्तियों पर, जो प्रत्येक रिक्तियों के पैदा होने के सात दिवस में दी जाएगी, मौजूदा नियमों/आदेशों में शिथिलता के सम्बन्ध में वही निर्देश लागू होगें, जो 14 फरवरी 1989 को पारित निर्णय में जारी किए गए थे। यह स्पष्ट किया जाता है कि किसी अन्य व्यक्ति की नियुक्ति के विरूद्घ रोक में सरकारी आदेश दिनांकित 29 नवंबर, 1982 के अनुसार समायोजन के माध्यम से नियुक्ति भी शामिल होगी।

जिला विद्यालय परिषद् के पास यह निर्देश देने की स्वतंत्रता आरक्षित है कि इनमें से किसी भी रिट याचिकाकर्ता को, जिसे नियुक्ति की पेशकश की गई है, जहाँ उसकी पहचान के बारे में कोई संदेह हो तो वह ड्यूटी जॉइन करने के बाद उनके एडवोकेट ऑन रिकॉर्ड से प्राप्त पहचान स्लिप प्रस्तुत करे।

9. इसके बाद दिबाकर पाल और अन्य ने एक और रिट याचिका दायर की। उस मामले में सिराजुल हक के मामले के निर्णय के आधार पर के. आई. शेफर्ड व अन्य बनाम भारत संघ ए. आई. आर. (1988) एस. सी. 686 के मामले में दिए गए सम्प्रेक्षण का अनुसरण करते हुए यह आदेश

पारित किया गया था और रिट याचिका निम्न निर्बन्धनों पर मंजूर की गई-

> " मेरे विचार में यह रिट याचिका कार्यवाहियों की बाहुल्यता का एक उदाहरण है और प्रत्यर्थी राज्य व परिषद् को इन याचिकाकर्ताओं को मिलने वाले लाभों की अनुमति देनी चाहिये थी जो उपर्युक्त वर्णित सिविल नियम के तहत उन याचिकाकर्ताओं को उपलब्ध हैं। एकल न्यायाधीश के निर्णय के आधार पर उपर्युक्त वर्णित अपील में इस न्यायालय द्वारा की गई घोषणा के मद्देनजर मैं प्रत्यर्थीगण को निर्देशित करते हुए याचिकाकर्ताओं को समान लाभ देता हूँ कि याचिकाकर्ताओं को इस दिनांक से तीन माह की अवधि के भीतर मौजूदा रिक्तियों के विरूद्घ प्राथमिक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाए।"

10. विद्वान एकल न्यायाधीश के 13 मार्च 1991 के आदेश से व्यथित होकर खण्ड पीठ के समक्ष एक अपील दायर की गई और खंड पीठ ने 26 जून, 1997 के आदेश द्वारा इस अपील को पोषणीयता के संबंध में प्रारम्भिक आपत्ति पर खारिज कर दिया, यानी कि, प्राथमिक विद्यालय परिषद् या अध्यक्ष, तदर्थ समिति, नादिया जिला प्राथमिक विद्यालय परिषद द्वारा दायर यह अपील पश्चिम बंगाल प्राथमिक शिक्षा अधिनियम 1970 की धारा 37 सपठित धारा 93 तथा पश्चिम बंगाल राज्य की

अधिसूचना दिनांकित 30 जून, 1990 के कारण पोषणीय नहीं पाई गई। यह तर्क दिया गया था कि प्राथमिक विद्यालय परिषद का गठन अभी तक नहीं किया गया था और तदर्थ समिति अभी भी 1990 की अधिसूचना के संदर्भ में काम कर रही है। इसलिए, इस आपत्ति को कायम रखा गया और विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को खण्ड पीठ द्वारा बरकरार रखा गया। यद्यपि, दिबाकर पाल के निर्णय में दिए गए आदेश का अनुपालन नहीं किया गया, जिसके परिणामस्वरूप अवमानना याचिका दायर की गई। इसके बाद, नियुक्ति दी गई और तदनुसार अवमानना याचिका का निस्तारण किया गया। फिर 26 जून, 1997 के आदेश के विरूद्घ एक पुनर्विलोकन आवेदन दायर किया गया और इसका निस्तारण 30 जून, 1999 को किया गया। इस पुनर्विलोकन याचिका में न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि 26 जून, 1997 को पारित आदेश पक्षकारों के अधिकारों और तर्कों के प्रति पूर्वाग्रह के बिना होगा और इसे किसी अन्य मामले में अपने बल पर एक अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा और यह मुद्दा भविष्य में किसी भी समुचित कार्यवाही द्वारा तय किए जाने के लिए इस रूप में खुला रहेगा क्योंकि इस मामले में सभी याचिकाकर्ताओं को नियुक्ति दी गई है। विद्वान अभिभाषक ने निवेदन किया कि, वास्तव में, नियुक्ति देने की पूरी कवायद सिराजुल हक मल्लिक के मामले में 30 जून, 1989 को आदेश पारित करने से शुरू हुई है और उस मामले में यह स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि इसे एक अधिकारिक

निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा। इसके बावजूद, सिराजुल हक मल्लिक के निर्णय का उपयोग बाद में दिबाकर पाल के मामले में किया गया है और दिबाकर पाल के निर्णय का अनुसरण वर्तमान सृष्टिधर बिश्वास के मामले में किया गया है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि दोनों खंड पीठों ने सिराजुल हक मल्लिक के मामले के स्पष्ट सम्प्रेक्षण पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया कि इस मामले को एक अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा। सिराजुल हक मल्लिक के मामले में पैनल की वैधता का कभी परीक्षण नहीं किया गया। यह मामला केवल रियायत के कारण ही तय किया गया था और यह स्पष्ट रूप से योग्य था कि इसे एक अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा। हम यह समझने में विफल हैं कि सिराजुल हक मल्लिक के मामले को बाद में दिबाकर पाल और सृष्टिधर बिश्वास (वर्तमान मामले में आलौच्य आदेश) के मामले में नियुक्ति आदेश पारित करने के लिए एक रिक्त चैक के रूप में कैसे माना जा सकता है, इस तथ्य के बावजूद कि सिराजुल हक मल्लिक के मामले में, मुख्य न्यायाधीश देसाई (तत्कालीन) की अध्यक्षता वाली खंड पीठ ने स्पष्टता के साथ यह स्पष्ट किया था कि यह आदेश रियायत के आधार पर पारित किया गया है। ऐसा आदेश रियायत के आधार पर इस स्पष्टीकरण के साथ था कि इसे अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जायेगा, इसका बाध्यकारी अधिकारिक निर्णय के रूप में अनुसरण नहीं किया जा सकता है। हम आगे टिप्पणी नहीं करना चाहते, लेकिन हमें यह

बहुत स्पष्ट करना होगा कि रियायत के आधार पर कोई भी आदेश विधि का निर्धारण नहीं करता और इसका अधिकारिक निर्णय के रूप में अनुसरण नहीं किया जा सकता। लेकिन खेदपूर्ण है कि एकल न्यायाधीश और खंड पीठ ने बाद में इसे एक कानून के रूप में लिया और अधिकारिक निर्णय के रूप में अनुसरण कर उन व्यक्तियों को अनुतोष दिया, जो बड़ी संख्या में लोगों को पीछे छोड़ गए थे जो पैनल में थे और जो न्यायालय के समक्ष पक्षकार नहीं थे। न्यायालय को राज्य सरकार पर वित्तीय भार डालने से पहले संयम रखना चाहिए। 1980 का एक पैनल 2004 तक यह महसूस किये बिना जीवित/कायम रखा गया था कि इस समय अनेक अभ्यर्थी कतार में प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सही तरीका नहीं था और हम इस तरह की कार्यवाही को स्वीकार नहीं कर सकते।

11. इस न्यायालय ने मित्तल इंजीनियरिंग वर्क्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम कलेक्टर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, मेरठ [1997] 1 एस. सी. सी. 203 के मामले में निम्नलिखित निष्कर्ष दिया है किः

> "किसी प्रस्ताव के समर्थन में किसी निर्णय पर भरोसा नहीं किया जा सकता है कि यह तय नहीं हुआ।"

12. इसी तरह, अर्नीत दास बनाम बिहार राज्य [2000] 5 एस. सी. सी. 488 के मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में टिप्पणी की हैः

"जब कानून का कोई विशेष बिंदु सचेत रूप से न्यायालय द्वारा निर्धारित नहीं किया जाता है तो वह 'निर्णय का औचित्य' (Ratio decidendi) का हिस्सा नहीं है और बाध्यकारी नहीं है।"

इसलिए, मल्लिक के मामले में दिया गया निर्णय बाध्यकारी नहीं है क्योंकि यह विधि का विनिश्चय नहीं करता। इसे बाध्यकारी अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है।

13. हमारी उपरोक्त विवेचना के परिणामस्वरूप, हमारा मत है कि सिराजुल हक मल्लिक और दिबाकर पाल के निर्णयों पर भरोसा करते हुए वर्तमान मामले (सृष्टिधर बिश्वास के मामले) में अपनाये गये दृष्टिकोण को बरकरार नहीं रखा जा सकता है क्योंकि सिराजुल हक मल्लिक के मामले में दिया गया निर्णय रियायत के आधार पर था और इसमें यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि इसे एक अधिकारिक निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा। इसलिए, हम खण्ड पीठ के आलौच्य आदेश दिनांकित 11.6.2004 को अपास्त करते हैं।

14. अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत अपील मंजूर की जाती है। हर्जे के रूप में कोई आदेश नहीं किया गया।

के.के.टी. अपील मंजूर की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मुकेश कुमार सोनी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।